

मौर्यकालीन प्रतिरक्षा व्यवस्था – एक विश्लेषण

अवनीन्द्र कुमार,
शोध-छात्र,
विश्वविद्यालय इतिहास विभाग
बी.आर.ए.बी.यू., मुजफ्फरपुर

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में किसी भी देश के राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए युद्ध अन्तिम उपाय माना जाता है। जब दो राज्यों की राजनीतिक समस्याओं का समाधान कूटनीतिक वार्ता तथा अन्य शान्तिपूर्ण साधनों से सम्भव नहीं होता है तभी लड़ाई के मार्ग का अवलम्बन किया जाता है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने साम, दान और भेद के बाद ही दण्ड के उपाय का आश्रय लेने का परामर्श दिया है क्योंकि युद्ध अपने आप में इतना अनिश्चित, व्ययसाध्य और भयावह है कि राजनीतिज्ञ इस बात का पूरा प्रयत्न करते हैं कि अपनी विदेश नीति के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए युद्ध का अवलम्बन न करना पड़े, किन्तु कतिपय परिस्थितियों में राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि के साधन हेतु राजनीतिक सत्ताधारियों को अन्तिम उपाय युद्ध की शरण लेनी ही पड़ती है।

ऐसा ही मौर्यकाल (322-185 ईसा पूर्व) के राजनीतिक सत्ताधारियों को अपने विशाल मौर्य साम्राज्य (मगध) की सम्प्रभुता व अखण्डता को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए युद्ध जैसी भयावह नीति को अपनाना पड़ा था। उत्तर में हिमालय और पश्चिम में हिन्दुकुश पर्वत से लेकर समुद्र पर्यन्त सहस्रत्रयोजन तक विस्तीर्ण मगध साम्राज्य के अभिवृद्धि व शासन संचालन आदि के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को मैत्रीपूर्ण बनाये रखें। इन सम्बन्धों के निर्धारण व संचालन का मुख्य आधार मंडल सिद्धांत था जो वर्तमान परिपेक्ष्य में विदेश नीति के संदर्भ में अत्यन्त ही प्रासंगिक है। यह सिद्धांत मुख्य रूप से युद्ध की नींव पर आधारित है। जिसमें विजिगीषु राज्य युद्ध के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहता है। जिससे अन्य दूसरे राज्यों को भी युद्ध की निरन्तर प्रेरणा मिलती रहती है। चक्रवर्ती और सार्वभौम सम्राट बनने की प्रवृत्ति से ओत-प्रोत मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य अपने गुरु सह प्रधानमंत्री आचार्य कौटिल्य की सहायता से एक विशाल चतुरंगिनी सेना का संगठन किया। जिसके द्वारा सम्पूर्ण भारत को एक राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँधा और अन्त्य और प्रत्यन्त राज्यों से पारस्परिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बनाया। जो चन्द्रगुप्त के परवर्ती मौर्य राजाओं के लिए भी पथ प्रदर्शक बना रहा।

चन्द्रगुप्त चुरंगिनी सेना के द्वारा सर्वप्रथम अपने देश को युनानी दासता से मुक्त कराया। नन्दों का उन्मूलन किया। सेल्यूकस को युद्ध में पराजित किया तथा उसके पुत्री के साथ विवाह कर उसके साथ मैत्रीपूर्ण राजनयिक सम्बन्ध स्थापित किया। फिर पश्चिमोत्तर भारत में विजय अभियान का मार्ग प्रशस्त किया। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त के उत्तराधिकारी बिन्दुसार तथा पौत्र अशोक ने भी अपने पूर्वजों के नीति व आदर्शों को अपनाया जिससे उनके शासनकाल में युद्ध की स्थिति यथावत् बनी रही। अशोक ने विजिगीषु की नीति का अनुसरण करते हुए ही कलिंग राज्य पर विजय प्राप्त की। यह बात अलग है कि युद्ध की विभीषिका को देखकर उसने युद्धनीति का परित्याग कर दिया। उसने 'भेरीघोष' को छोड़कर 'धम्मघोष' को अपना लिया और अपने सीमावर्ती शासकों और आटविकों को सावधान किया कि वे पुनः उसे कठोर नीति को अपनाने को बाध्य न करे। वैसे अशोक के परवर्ती मौर्य राजाओं ने भी युद्धों एवं आक्रमणों को सराहा।

मौर्य साम्राज्य की सम्प्रभुता व अखण्डता की सुरक्षा एवं सैनिकों के संरक्षण की दृष्टि से दुर्ग का अत्यधिक महत्त्व था। सुरक्षा की दृष्टिकोण से दुर्ग राज्य का आवश्यक अंग था क्योंकि दुर्ग के अन्दर राजा, मन्त्री, अमात्य, सैनिक, प्रजा आदि सभी के निवास तथा सुरक्षा की समुचित व्यवस्था की जाती थी।¹ राजधानी का निर्माण भी दुर्ग के रूप में ही किया जाता था। सैन्य दृष्टि से दुर्ग महत्त्वपूर्ण स्थानों और जनपद की सीमाओं पर बनाये जाते थे।² मनु ने दुर्ग को राष्ट्र से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना है और दुर्ग को राष्ट्र के पूर्व स्थान दिया है। याज्ञवल्क्य ने दुर्ग के महत्त्व के संदर्भ में कहा है कि दुर्ग राजवंश, राज्य की प्रजा, राजकोष और मित्र आदि की रक्षा व आश्रय के मुख्य साधन होता है।³ अतः नगर, धन-सम्पत्ति तथा जीवन की सुरक्षा की दृष्टि से नगरों को पत्थर की दीवारों से घिरे परकोटे के अन्दर रखा गया था क्योंकि अनेक दुर्गों का स्वामी (राजा) अपनी प्रजा के अतिरिक्त अपने शत्रुओं का भी आदर प्राप्त करता है।

दुर्गों को प्रायः प्राकृतिक आपदाओं व अन्य संकटों आदि से सुरक्षा को ध्यान में रखकर ही बनाया गया था। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में दुर्ग और उसकी दीवारों, खाइयों और द्वारों का उल्लेख किया है।⁴ बौद्ध ग्रंथों में भी दुर्गों के कई प्रसंग मिलते हैं। जातक कथाओं में भी एक विशाल दुर्ग का उल्लेख है। उसके प्रवेश द्वारों पर परकोटे के साथ बुर्ज बने थे और बुर्जों के बीच तीन खाइयाँ थीं—पानी की खाई, कीचड़ की खाई और सूखी खाई। गार्गी संहिता में तो कर्दम से भरी हुई पाटलिपुत्र की परिखा का संकेत विद्यमान है।⁵

राजधानी पाटलिपुत्र गंगा और सोन नदी के संगम तट पर बसा हुआ था किन्तु महाभाष्य से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन पाटलिपुत्र सोन के तट पर बसा हुआ था।⁶ मेगस्थनीज के अनुसार पाटलिपुत्र नगर की लम्बाई 9½ मील थी और चौड़ाई 1½ मील थी। नगर चारों ओर से एक गहरी खाई से घिरा हुआ था जो लगभग 600 फीट चौड़ी और 60 फीट गहरी थी। खाई में सोन नदी का पानी भरा रहता था। खाई के अतिरिक्त नगर चारों ओर से एक विशाल लकड़ी की दीवार से घिरा था जिस पर 570 बुर्ज और आने-जाने के लिए 64

द्वार बने थे।⁷ दीवार पर छिद्र बने हुए थे जिससे धनुर्धर शत्रुओं पर बाण चलाते थे। परकोटे की दीवारों पर जहरीली लताएँ और कटीली झाड़ियाँ लगी होती थी।

परिखा के भीतर पाटलिपुत्र में जो प्राचीर थी मेगस्थनीज के अनुसार वह काष्ठ द्वारा बना था। पटना के लोहनीपुर, बुलन्दीबाग, बहादुरपुर, कुम्हारार, महाराज खण्ड, सेवई टैंक और गांधी टैंक नामक स्थानों की खुदाई के दौरान काष्ठ निर्मित दीवार के अनेक भग्नावशेष मिले हैं। 1926-27 में बुलन्दीबाग में जो खुदाई की गई थी उसमें इस प्राचीर का एक अंश मिला जिसकी लम्बाई 250 फीट है। यहाँ लकड़ी के खम्भों की दो पंक्तियाँ पायी गईं। जिनके बीच का अन्तर लगभग 14 फीट है। कुम्हारार की खुदाई से भी विशाल भवन के अवशेष प्राप्त हुए जिसमें 80 स्तम्भ थे।⁸ काष्ठ निर्मित अनेक भग्नावशेष भी मिले हैं। दुर्ग रूपी नगरों के बीच राजमार्गों व अन्य सड़कों आदि के होने के भी कई प्रमाण मिले हैं।

कौटिल्य अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि इस युग में चार प्रकार के दुर्गों को बनाया गया था – औदक दुर्ग, पर्वत दुर्ग, धान्वन दुर्ग और वन दुर्ग।⁹ जल से घिरे किसी स्वभाविक द्वीप या गहरी खुदी हुई खाई से परिवेष्टित स्थान को **औदक दुर्ग** कहा जाता है। बड़ी-बड़ी चट्टानों, पर्वत-श्रेणियों एवं कन्दराओं से घिरे दुर्ग **पर्वत दुर्ग** कहलाता है। जल तथा घास आदि से हीन ऊसर प्रदेश में बना हुआ दुर्ग **धान्वन दुर्ग** माना जाता है। दलदल, बीहड़ जंगलों एवं कांटेदार झाड़ियों से परिवेष्टित दुर्ग **वन दुर्ग** कहलाता है। कौटिल्य और मनु ने सभी दुर्गों में **गिरिदुर्ग** को श्रेष्ठ माना है क्योंकि उसे जीतना अत्यन्त कठिन था।¹⁰ पर महाभारत में **नृदुर्ग** को श्रेष्ठ माना गया है। दुर्ग धन-धान्य, वाहन, बल, ब्राह्मण, फल, और पुष्प, अस्त्र-शस्त्र, देवमंदिर, अग्निशाला, जल, तथा वृक्षादि से सम्पन्न होता था।

इन दुर्गों में से प्रथम दो दुर्ग— औदक दुर्ग एवं पर्वत दुर्ग शत्रु के आक्रमण से राज्य की सुरक्षा में सहायक होते थे तथा अन्तिम दो दुर्ग—धान्वन दुर्ग एवं वन दुर्ग राज्य की सुरक्षा के लिए सहायक होते थे। आपत्ति के समय राजा भागकर इन दुर्गों की शरण लेकर आत्म रक्षा करते थे।¹¹

दुर्ग के चारों ओर एक प्राचीर होती थी जिसमें बारह द्वार होते थे। दुर्ग में प्रवेश के लिए स्थल मार्ग, जल मार्ग और गुप्त सुरंगी मार्ग होते थे।¹² सुरंगी मार्गों को गुप्त रूप से बनवाया जाता था। दुर्ग के अन्दर तीन राज-मार्ग पूर्व से पश्चिम की दिशा में और तीन राज-मार्ग उत्तर से दक्षिण की दिशा में आने-जाने के लिए होते थे। कुशल और चतुर प्रहरी द्वारा दुर्ग की रखवाली करायी जाती थी। ताकि कोई अवांछित जन-समुदाय उसके भीतर प्रवेश न कर सकें।

दुर्गों की सेनाएँ 'अन्तपालों' की अधिनता में होती थी। अन्तपाल दुर्गों के रक्षा के लिए वागरिक (लुब्धक), षबर, पुलिंद, चाण्डाल एवं अन्यान्य बर्बरों आदि जातियों के योग्य लोगों को सैनिकों में नियुक्त करता था।¹³

दुर्ग भेदन के उपाय के संदर्भ में कौटिल्य अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि पृथ्वी को जीतकर विजिगीषु राजा वर्णाश्रत-भेद से यथोचित व्यवस्था करता हुआ स्वधर्म के अनुसार पृथ्वी का भोग करे। उपजाप, अपसर्प, वामन (शत्रु को दुर्ग से निकालने के लिए विवश करना), पर्युपासन और अवमर्द अर्थात् शत्रु दुर्ग को नष्ट करना। इन पाँच उपायों से ही शत्रु के दुर्ग को जीता जा सकता है।¹⁴ अतः शत्रु के दुर्ग की घेराबन्दी करना, दुर्ग में सुरंग बनाना, शत्रु की स्वभरण व्यवस्था को नष्ट करना, उस पर पीछे से हमला करना और हाथी से रौंदवाना आदि को उचित माना जाता था। यद्यपि आज इस क्षेत्र में विस्फोटक पदार्थों का महत्त्व काफी बढ़ गया है।

शत्रुओं को दमन करने के लिए प्रकाशयुद्ध, कूटयुद्ध और तूष्णीयुद्ध किया जाता था। किसी देश और समय को निश्चित करके जो युद्ध की घोषणा की जाती है, उसे **प्रकाशयुद्ध** कहते हैं।¹⁵ थोड़ी सी सेना को बहुत दिखाकर भय पैदा कर देना, किलों को जलाना एवं लुट-पाट करना, प्रमाद तथा व्यसन के समय शत्रु को पीड़ित करना, एक स्थान का युद्ध छोड़कर दूसरी ओर से धावा बोल देना **कूटयुद्ध** कहलाता है।¹⁶ विष और औषधिक आदि के प्रयोगों तथा गुप्तचरों के उपजाप (धोखा-बहलाना) आदि के प्रयोगों से शत्रुओं का विनाश करना **तूष्णीयुद्ध** कहलाता है।¹⁷ इस संदर्भ में आज भी मौर्य युग की तरह वर्तमान राष्ट्र-राज्य शत्रुओं का नाश करने, उसके बारे में गुप्त जानकारी हासिल करने एवं अपराधों के निरस्तीकरण हेतु गुप्तचर तथा पर्युपासन जैसे संसाधनों का औचित्यपूर्ण उपयोग करते हैं।

मौर्यों की सेना विशाल और सुसंगठित थी। इस संदर्भ में यूनानी लेखकों ने लिखा है कि मगध की सेना में 600000 पैदल सैनिक, 30000 अवशरोही और 9000 हाथी थे। रथों की संख्या के विषय में ग्रीक लेखकों में मतभेद है। कर्टियस ने उनकी संख्या 2000 लिखी है और प्लूटार्क ने 8000। यह संख्या उन सैनिकों की है जो स्थायी रूप से मगध की सेना में थे।¹⁸

मेगस्थनीज के उल्लेखानुसार इस विशाल सेना के रख-रखाव के लिए छः समितियों का गठन किया गया था। प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे। जो इस प्रकार हैं—

प्रथम उपसमिति पैदल सेना की व्यवस्था करती थी। **द्वितीय उपसमिति** अश्वारोही सेना की देख-रेख करती थी। **तृतीय उपसमिति** रथ सेना का प्रबंध करती थी। **चतुर्थ उपसमिति** हस्ति सेना की व्यवस्था करती थी। **पंचम उपसमिति** सेना के लिए आवश्यक खाद्य-सामग्री, युद्ध के लिए उपयोगी अस्त्र-शस्त्र एवं अन्य उपकरण और सामान की ढुलाई के साधन जुटाने आदि का कार्य करती थी। **षष्ठ उपसमिति** जल-सेना की व्यवस्था करती थी।¹⁹

सैन्य विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी सेनापति होता था जिन्हें 48,000 पण वार्षिक वेतन दिया जाता था। नायक समर भूमि में सेना का नेतृत्व करने वाला अधिकारी होता था। इन्हें 12,000 पण वार्षिक वेतन मिलता था।²⁰ 'अर्थशास्त्र' में नावाध्यक्ष के उल्लेख से मौर्यों के पास नौ-सेना के होने का भी प्रमाण सिद्ध होता है।

ग्रीक लेखकों के विवरणों से मौर्यकालीन सैन्य-संगठन की कुछ झलकियाँ प्राप्त होती हैं। आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रणीत 'अर्थशास्त्र' में सैन्य विभाग के संगठन का अलग से कहीं निरूपण नहीं किया गया है किन्तु गंभीरतापूर्वक चिन्तन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्य द्वारा उल्लिखित पत्यध्यक्ष, अश्वध्यक्ष, रथाध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष, गोध्यक्ष, नावध्यक्ष आदि ग्रीक लेखकों द्वारा वर्णित उपसमितियों को ही सूचित करते हैं।

कौटिल्य ने सेना में विभिन्न वर्णों की नियुक्ति, सेना की योग्यता, सेना के अंग एवं उनके कार्य और उनकी देख-भाल, दुर्ग-छावनी, अस्त्र-शस्त्र, सेना का संचालन, चिकित्सा व्यवस्था, सैन्योत्साहन आदि अनेक विषयों के सम्बन्ध में जो नीति व सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है वे तत्कालीन सैन्य संगठन के लिए तो महत्वपूर्ण थे ही आधुनिक सैन्य संगठन के लिए भी उपादेय है। इतना ही नहीं उनकी नीति व सिद्धान्तों के आलोक में आधुनिक काल में भी कई युद्ध संचालित किये गए हैं और कई अघोषित युद्ध होते आ रहे हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मौर्यकालीन प्रतिरक्षा व्यवस्था के संदर्भ में जितने भी राजनीतिक मनीषियों ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये हैं उनमें कौटिल्य ने प्रतिरक्षा व्यवस्था कि जो रूप-रेखा की मान्यता अपने अर्थशास्त्र में प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त ही उच्च कोटि की है। जिसकी प्रासंगिकता वर्तमान परिपेक्ष्य में आज भी बनी हुई है। राज्य की प्रशासन में सुरक्षा व अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों के संचालन के लिए उनके मान्यताओं को ही आधार मानकर लगभग प्रत्येक विकसित व विकाशील राज्य एक दूसरे देश के साथ प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अपने राजनीतिक सम्बन्धों का निर्धारण व संचालन कर रहे हैं। जिनका उस राज्य से किसी भी प्रकार का संबंध होता है। यद्यपि आज की परिस्थितियाँ भिन्न हैं पूरे विश्व में भू-स्थानिक राजनीति, कुटनीति और उपग्रहों व तकनीकी विकास के कारण राष्ट्रों की अपनी सुरक्षा में नए-नए आयाम जुड़ते जा रहे हैं। फिर भी प्रारंभिक तौर पर ही युद्ध को राजनीति के साधन के रूप में मान्यता तो नहीं दी जा सकती किन्तु युद्ध किसी न किसी रूप में राजनीति का साधन बना रहेगा। अतः युद्ध अस्तित्व की रक्षा के लिए परमावश्यक है।

संदर्भ –

1. योगी, श्री भारतीय, कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्रथम संस्करण 1973, संस्कृत संस्थान, वेदनगर, बरेली, 10/1, पृ. 652-654, 6/1, पृ. 456-60
2. चतुर्दश जनपदान्ते साम्प्रदायिकं दैवकृतं दुर्ग कारयेत्। कौ. अर्थ. 2/3, पृ. 99; पाण्डेय, रामनारायणदत्त शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2051, छठा संस्करण, महाभारत, शान्तिपर्व, 58/18; विद्यालंकार, सत्यकेतु, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, आठवीं बार छपी, 2010, पृ. 438
3. कामंदकीय नीतिसार, 4.56; महाभारत, शान्तिपर्व, 58.18; याज्ञवल्क्य 1/321; मनु. 9/294; कौ.अर्थ. 2/1, पृ. 92; कौ.अर्थ. 10/1; विद्यालंकार, सत्यकेतु, उपर्युक्त, पृ. 439
4. अग्रवाल, बी.एस., इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनि, पृ. 137-40; कौ.अर्थ. 2/3, पृ. 99
5. ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे प्रथिते हिते।" गार्गी संहिता (युगपुराण) 97; विद्यालंकार, सत्यकेतु, पूर्वोक्त, पृ.636
6. अनुगंगं हस्तिनापुरम्। अनुगंगं वाराणसी। अनुसोणं पाटलिपुत्रम्। महाभाष्य सूत्र, 2/1/16; विद्यालंकार, सत्यकेतु, पूर्वोक्त, पृ.636
7. चौधरी, राधाकृष्ण, प्राचीन भारत का राजनितिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पुनर्मुद्रण 2011, पृ.161; नाहर, रतिभानु सिंह, प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 227; झा, द्विजेन्द्रनारायण एवं श्रीमाली, कृष्णमोहन, प्राचीन भारत का इतिहास, 44वां पुनर्मुद्रण, जनवरी 2017, पृ.220
8. विद्यालंकार, सत्यकेतु, पूर्वोक्त, पृ. 636-38
9. कौ. अर्थ. 2/3, पृ. 99, 7/10, पृ. 522; वायुपुराण, 8/108
10. कौ. अर्थ. 2/3, पृ. 99, 7/10, पृ. 522; शक्रुनीति 4/854-55; महाभारत, शान्तिपर्व 56/35; मनुस्मृति, 7/71; नीतिवाक्यामृत, 20/3; मत्स्यपुराण, 217/6-7; विष्णुधर्मसूत्र, 3/6
11. झा, डॉ. ब्रजकिशोर, प्रमुख राजनीतिक चिंतक, पृ. 389; महाभारत, शान्तिपर्व, 58/18
12. कौ. अर्थ. 2/4, पृ. 105, 11/5, पृ. 712
13. कौ. अर्थ. 2/1, पृ. 92
14. कौ. अर्थ. 13/4, पृ. 735-744
15. प्रकाशयुद्धं निर्दिष्टो देशेकाले च विक्रमः। विभीषणमवस्कन्दः प्रमादव्यसनार्दनम्। कौ. अर्थशास्त्र 7/6, पृ. 499
16. एकत्र त्यागधातौ च कूटयुद्धस्य मातृका। कौ. अर्थशास्त्र 7/6, पृ. 499
17. योगगूढोजापर्थं तूष्णींयुद्धस्य लक्षणम्। कौ. अर्थ. 7/6, पृ. 499
18. विद्यालंकार, सत्यकेतु, पूर्वोक्त, पृ. 427
19. मैक्रिंडल, मेगस्थनीज, पृ. 88; विद्यालंकार, सत्यकेतु, पूर्वोक्त, पृ.427
20. विद्यालंकार, सत्यकेतु, पूर्वोक्त, पृ. 430